APPROPRIATION BILL*

The Minister of Revenue and Civil Expenditure (Shri M. C. Shah): I beg to move for leave to introduce a Bill to authorise payment and appropriation of certain further sums from and out of the Consolidated Fund of India for the service of the financial year 1955-56.

Mr. Chairman: The question is:

"That leave be granted to introduce a Bill to authorise payment and appropriation of certain further sums from and out of the Consolidated Fund of India for the service of the financial year 1955-56."

The motion was adopted.

Shri M. C. Shah: I introduce the Bill.

LIFE INSURANCE (EMERGENCY PROVISIONS) BILL—*Contd.*

Mr. Chairman: The House will now resume consideration of the Life Insurance (Emergency Provisions) Bill. Out of 12 hours allotted for this Bill, namely 10 hours for general discussion, 1½ hours for clause-by-clause consideration and ½ hour for third reading, 2 hours and 22 minutes have already been availed of. This leaves a balance of 7 hours and 38 minutes for general discussion.

Shri Anirudha Sinha was on his legs yesterday. He will continue his speech.

श्री अनिरुद्ध सिंह (दरभंगा पूर्व) : सभापति महोदय, जैसा मैं कल ब्यान कर रहा था, इस देश में चाहे निजी क्षेत्र हो चाहे सार्वजनिक क्षेत्र बीमा कंपनियां और बैंक ही पूंजी मुहैया करने का सब से बड़ा जरिया रही हैं, खास कर हमारे ऐसे देश में जिस की अर्थ व्यवस्था प्रारम्भिक अर्थात् फार्मेटिव स्टेज में हो । हमारा देश आज इसी अवस्था से गुजर रहा है, इस लिये बीमा व्यवसाय को सरकारी प्रबन्ध में लेना आवश्यक हो गया है ।

दूसरी बात यह है कि हमारी सरकार अपने सामने कल्याणकारी राज्य की स्थापना तथा समाजवादी ढंग की समाज व्यवस्था का लक्ष्य रख चुकी है । अब प्रथम पंचवर्षीय योजना का कार्य काल समाप्त हो रहा है तथा राष्ट्र द्वितीय पंचवर्षीय योजना की देहली पर है । द्वितीय पंच वर्षीय योजना में बुनियादी तथा भारी व्यवसायों की स्थापना पर जोर दिया गया है, इस के लिये पूंजी की बड़ी आवश्यकता होगी । मैं समझता हूं कि हमारे प्राइवेट इन्वेस्टर्स (निजी पूंजी लगाने वाले) आजकल व्यवसाय में पूंजी लगाने म बहुत संकोच कर रहे हैं । यहां तक कि अब निजी क्षेत्र के व्यवसाय भी पूंजी के लिये सरकार का ही मुंह जोहते हैं । देश में इतने आर्थिक निगम कायम हुए हैं, यह इसी बात का सबूत है । अतः देश की छोटी छोटी बचतों को भी संग्रह कर के राष्ट्र के काम में लाने के लिये मैं समझता हूं कि बीमा व्यवसाय का सरकारी प्रबन्ध में लेना बहुत जरूरी था । यह तो हुआ रचनात्मक दृष्टिकोण ।

जैसा कि हमारे माननीय वित्त मंत्री ने कहा है, पालिसी होल्डरों (बीमाधारियों) की दृष्टि से भी बीमा व्यवसाय को निजी क्षेत्र में रहने देना खतरे से खाली नहीं था । हमारे देश में अच्छी, बीच के दर्जे की तथा बुरी प्रत्येक प्रकार की कंपनियां जीवन बीमा व्यवसाय में लगी हुई थीं । कुछ कंपनियां तो ऐसी थीं जिन की ख्याति खास तौर से अंतर्राष्ट्रीय हो चुकी थी और दूसरे देशों में भी उन का थोड़ा बहुत बिजिनेस (व्यापार) होता था । किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कुछ कंपनियों का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं था । ऐसी कंपनियों में पालिसी होल्डरों के हित को सर्वोतम नहीं रक्खा जाता था । यह बात दूसरी है कि ऐसी कंपनियां बहुत प्रगति नहीं कर सकीं, और, जैसा कि सर्वविदित है, प्रोप्रायटरी कंपनियों में कुछ को छोड़ कर अधिकतर कंपनियां व्यक्ति विशेष के प्रभाव में थीं । उन के एक्सपेन्सेज (व्यय) ज्यादा थे और जीवन बीमा कोष अपर्याप्त था । यह बात ध्यान रखने की है कि सन् १९३८ के बीमा कानून के अनुसार कंपनियों की अपने बचत कोष का ५० प्रति शत तो सरकारी तथा सरकार द्वारा मान्यता प्रदाय किये गये ऋण के कागजों में लगाना पड़ता था । बाकी ५० प्रति शत रकम को कुछ कंपनियां ऐसे व्यवसायों में लगाती थीं जो पालिसी होल्डरों की दृष्टि से सुरक्षित नहीं कहा जा सकता है जैसे मकानात या दूसरी अचल सम्पत्ति पर । जैसा कि हमारे माननीय फाईनेंस मिनिस्टर साहब ने कहा है कि गत्ते

---

* Published in the Gazette of India Extraordinary, dated 1-3-56, pp. 73 to 75.

** Introduced with the recommendation of the President.

की खड़ी फसल और दूसरी फसलों पर ऋण दिया जाए, इस वास्ते भी सरकार को बीमा व्यवसाय को अपने हाथों में लेना पड़ा है। पिछले चन्द सालों से कुछ कम्पनियों का काम काज ठीक नहीं चल रहा था। इसका प्रमाण यह है पिछले १० वर्षों में करीब २५ कम्पनियों को दिवालिया होना पड़ा। इतनी ही कम्पनियों को दूसरी बड़ी कम्पनियों में मिल जाने की गवर्नमेंट को इजाजत देनी पड़ी। इसके साथ ही साथ करीब ११ कम्पनियों में सरकार को प्रशासक नियुक्त करने पड़े। अभी तक हमारे देश में ३१७ बीमा कम्पनियां थी। उनके साथ चालू बीमा की रकम करीब १२ अरब की थी। उनका जीवन बीमा कोष करीब ४ अरब का था। उनकी प्रीमियम से सालाना आमदनी करीब ५५ करोड़ थी। पालिसियों की संख्या करीब ५० लाख थी। तीस लाख व्यक्तियों का जीवन बीमा हुआ था। अमरीका के १९५२ के आंकड़ों से पता चलता है कि वहां पर प्रति व्यक्ति ८,००० रुपये से ज्यादा और कनाडा में प्रति व्यक्ति ६,००० से ज्यादा जीवन बीमा होता है जब कि भारत में प्रति व्यक्ति २५ रुपये का बीमा पड़ता है। इतने बड़े देश के लिए बीमा के यह आंकड़े नगण्य हैं। बीमा को इस देश में शुरू हुए करीब १०० बरस हो गए हैं लेकिन कोई खास तरक्की जीवन बीमा के इतने ज्यादा अर्से में की हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। और अब जब कि सरकार इस व्यवसाय के क्षेत्र को व्यापक बनाना चाहती है, सरकार बीमे के सन्देश को देश के कोने कोने में पहुंचाना चाहती है, इसमें इसको सभी का सहयोग प्राप्त होगा, इसमें कोई शक की बात नहीं है।

4 P.M.

यह एक बहुत बड़ा व्यवसाय है जिस पर कि बहुत बड़ी राशि लगी हुई है। साथ ही इस व्यवसाय का सम्बन्ध देश के करोड़ों नागरिकों तथा उनकी मेहनत से कमाई गई आमदनी से है। इस व्यवसाय में न तो किसी वस्तु का उत्पादन होता है और न ही विक्रय। न वह वस्तु टैंजिबल (मूर्त) है। इसका मुझे हिन्दी अनुवाद नहीं आता और आशा है टंडनजी इसका अनुवाद कर देंगे। इस व्यवसाय में जो काम करते हैं उनका सम्पर्क आम जनता से पड़ता है और आम जनता का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक चीज है। इस व्यवसाय में लोगों के भविष्य की सुरक्षा की बिक्री की जाती है। इससे मनुष्य की समाज के प्रति मानवता के प्रति सुंदर सहयोग की भावना पैदा होती है। अतः सरकार का अब इसको सरकारी क्षेत्र में लेने का विचार है। अतः सरकार से मेरी प्रार्थना है कि वह बहुत सोच समझ कर कदम उठाये। बीमा इस देश में खरीदा नहीं बेचा जाता है। यह व्यवसाय बहुत अंशों में प्रतियोगिता से बढ़ा है।

सर्विस तथा सिक्योरिटी सेना तथा सुरक्षा इस व्यवसाय की खासियत है। जहां तक सिक्योरिटी का सवाल है, अब जब कि यह सरकार के हाथ में आ गया है, इसमें किसी को भी किसी किस्म का खतरा नहीं होना चाहिए। रही अच्छी सर्विस मुहैया करने की बात, यहीं पर सबसे बड़ा खतरा नजर आता है। यह खतरा और भी बढ़ जाता है जब हम यह देखते हैं कि अब इस व्यवसाय में प्रतियोगिता की बात खत्म हो गई है। अतः यदि सरकार को बीमा के सन्देश को देश के कोने कोने में पहुंचाना है और इसको स्टेट ट्रेडिंग (राज्य व्यापार) के तौर पर चलाना है तो उसे अपनी योग्यता का प्रमाण देना होगा। अगर सरकार रेड-टेपिज्म (लालफीता शाही) में पड़ गई, जैसे कि यह दूसरे डिपार्टमेंट (विभागों) में पड़ी है, तो भगवान जाने इस व्यवसाय का भविष्य क्या होगा। अतः सरकार से मेरा आग्रह है कि साईन क्योर बहालियों को छोड़ कर अभी तक भूतपूर्व कम्पनियों की जितनी भी बहालियां हैं उनकी सेवायें अक्षुण्ण रखी जायें। ऐसा करने से सरकार को उन कर्मचारियों की लायलिटी (निष्ठा) मिलती जायगी।

हाल ही में छोटी छोटी बीमा कम्पनियों में यह प्रवृत्ति आ गई थी कि वे बड़ी बीमा कम्पनियों के मुलाजिमों को ज्यादा वेतन का लोभ देकर उनको फुसला लेती थी। आशा है कि सरकार ऐसी बहालियों की छानबीन कर लेगी। यदि उसने ऐसा न किया तो इससे बड़ा असन्तोष फैलेगा।

इस व्यवसाय की रीढ़ इसका फील्ड स्टाफ (क्षेत्रीय कर्मचारी) है। अब जब कि इस व्यवसाय पर सरकार का एकाधिकार होगा तो प्रीमियम तथा बोनस (किस्त तथा लाभांश) की कमोबेशी पर तथा पालिसी की शर्तों पर एजेन्टों को जीवन बीमा का प्रस्ताव नहीं मिलगा। अब उन्हें उनकी सेवा के बलपर बीमे का प्रस्ताव मिलेगा। अतः जीवन बीमा व्यवसाय के सरकारी हाथ में आ जाने से पालिसी होल्डरों को सेवायें उपलब्ध की जाती हैं उनमें सुधार नहीं हुआ तो न केवल जन साधारण जीवन बीमा के प्रोटेकशन (सुरक्षा) से वंचित रहेगा बल्कि सरकार भी अपने लक्ष्य तक पहुंचने में असफल रहेगी। अतः

[श्री अनिरुद्ध सिंह]

सरकार को फील्ड आर्गनाइजेशन (संघ संगठन) पर विशेष ध्यान देना चाहिये । इतना जरूर है कि इस व्यवसाय को दक्षता तथा ईमानदारी से भी चलाना सरकार का कर्त्तव्य है ।

अब मुझे एक बात फाइनेंस मिनिस्टर साहब से कहनी है और वह यह है कि यह मेरी समझ में नहीं आता कि पोस्टल लाइफ इनश्योरेंस (डाक विभागीय जीवन बीमा) को हाथ में क्यों नहीं लिया गया है और क्या कारण है कि उसको अलग रखा गया है । आशा है कि अर्थ मंत्री इसका स्पष्टीकरण करेंगे ।

सब से महत्वपूर्ण बात जो इस व्यवसाय के सम्बन्ध में है वह मृत्यु होने के बाद के दावे के भुगतान के सम्बन्ध में है । आज तक कम्पनियों द्वारा आपसी होड़ के कारण तथा अपनी गुडविल (साख) कायम रखने के लिए मृत्यु के दावों की रकम का जल्दी से भुगतान कर दिया जाता था । किन्तु अब तो यह होड़ नहीं रहेगी । अतः सरकार की सफलता बहुत अंशों में मृत्यु के दावे के भुगतान से बंधी हुई है तथा उसकी उदारता पर निर्भर करती है । यद्यपि अर्थ मंत्री जी ने अपने प्रारंभिक भाषण में इस उदारता बरतने का आश्वासन दिया है परन्त आज तक का इतिहास तो यही कहता है कि ऐसा होता नहीं है । मैं ने देखा है कि मरने वाले के वारिस को जीवन बीमे के दावे का भुगतान पहले हो जाता है और प्राविडेंट फंड (भविष्य निधि) का भुगतान बाद में । अतः मैं प्रार्थना करता हूं कि जब तक बीमा निगम नहीं बन जाता, इस व्यवसाय से सम्बन्धित विशेषज्ञों की राय से भारत सरकार अपनी नीति निर्धारित करे जिससे कि यह काम धड़ल्ले से होता रहे ।

अन्त में मैं माननीय मंत्री जी को धन्यवाद देता हूं और इस विधेयक का हृदय से समर्थन करता हूं ।

Shri Asoka Mehta (Bhandara): Mr. Chairman, I welcome this proposal for nationalisation of life insurance in our country. I listened yesterday very carefully and attentively to the powerful and persuasive speech that was made by the Finance Minister. Before I offer my supporting arguments to the Bill, that has been introduced, I would like to say that I have not been convinced by the arguments offered by the Finance Minister on two side points. Firstly, I am still unable to understand why in a matter of this importance, this House has been faced by a *fait accompli*. Granted mismanagement of the insurance companies, I do not think a delay of a couple of weeks this way or that way would have brought the heavens down. There was, as a matter of fact, no element of surprise in this proposal for nationalisation.

The Finance Minister quoted a financial journal. May I, Sir invite his attention through you to what two other equally influential financial journals have to say on the subject? *Capital*, in its issue of 26th January, says :

> "Nobody can say that the Government's decision to nationalise life insurance has come as a surprise. The idea has been under discussion so long that it had the appearance of an established fact."

The *Indian Finance*, in its issue dated 4th February 1956 says:

> "The element of surprise, if at all in the nationalisation of life insurance was limited to its timing not in its actual coming into being."

This element of surprise about the timing is qualified by the *Indian Finance* by saying, if at all. I believe, in a matter of this importance, things should not be done by Ordinance. It robs Parliamentary debate of all its significance. It gives an impression to the people outside, to the larger public whom we seek to serve, that the executive is the dominant party and the legislature is merely a registering body.

Then, the Finance Minister told us that though the Government was armed with a plenitude of powers, the insurers were so ingenious, were so able, that every time they were able to get round the powers that were given to the Government. The Insurance Act of 1938 was amended, according to the Finance Minister, 10 times and according to my information, 12 times. Every time, more and more powers were given to the Government. I shall not take your time by cataloguing the various sections of this Act and the far-reaching powers that were given to the Government. Were these powers used? Were these powers used at all effectively, adequately at any time? Then, it is not enough to arm the Government with certain powers. The Government should have thought of developing, organising, new institutions. I believe, as early as 1944 or 1945, a suggestion had been made in influential quarters that the Government should set up a State Insurance Investment

Board. Why was not such a Board set up? By now, we would have collected a large amount of information and a considerable amount of experience if this had been done. The *Indian Finance* has said that investment in private hands is "mercenery" while investment in State hands is "utilitarian". The transition could have been brought about in the last decade from mercenery investment to utilitarian investment. I do not know why during the last 10 years, these positive measures were not undertaken.

In the U.S.A. the Code of conduct was adopted as early as 1906. In India, the Code of conduct was drawn up only in 1952 and even that was permitted to remain a dead letter.

In the Statement of Objects and Reasons, I find a statement which has become somewhat characteristic of the Finance Minister. It is said :

> "Tightening up the provisions of the Insurance Act is no remedy since it is only of a negative character. Government have therefore decided to nationalise the Life Insurance business."

It has become a recurring refrain with the Finance Minister to say that whatever powers are given to him, whether that be for controlling capital issues, or for controlling the insurance business in the country, they are only negative powers. This persistent lament pursues us all the time. Are powers of control and regulation of a negative character? If that is so, why did he take so much of our time in discussing and putting on the statute-book the Company law? There also, I do not know whether, after a few years, the Finance Minister will come forward and say, his powers are only of a negative character. I am in favour of nationalisation of insurance. I want to make it very clear. I am not in favour of nationalisation of everything. I believe that the Government should have the ability, should have the knowledge, the self-confidence and awareness of using the regulatory and controlling powers that are given to them. In other countries in Sweden, in Norway, for instance even with socialist Governments, they have decided that insurance should not be nationalised because they found that powers of control and regulation were sufficient. In other countries, powers of regulation and control have been conceived as positive powers. It is a new theory that the Finance Minister is trying to elaborate that powers of regulation and control are essentially, inevitably, of a negative character. Professor Mario Einaudi of the Cornell University, in a very interesting study that he has made of nationalisation in France and Italy has said:

> "After looking at the experience of several countries, one is tempted to say that nationalisation is an escape from planning."

In many countries of the world nationalisation becomes a refuge box. When people are not able to find a solution, they rush to nationalisation. That is an escapist kind of nationalisation. I do not want an escapist kind of nationalisation in my country. I would like to nationalise a particular segment of our economy when we think that that is going to help us, is going to accelerate our development and will enhance social control over economy. To say that we are unable to control a particular thing and therefore we have got to take over its management, to my mind, is a philosophy of escapism.

Private industry has been making claims that the insurers have doubled the rate of annual insurance as well as the total insurance between 1945 and 1955. May I point out that the increase has been particularly sharp in the last few years and there also for special reasons, reasons made available, reasons provided by the favourable policy of our Government: The Estate Duty Act, the incentive given to new insurance, by tax rebates in the budget of 1955-56, the new idea of staff insurance or group insurance and lastly the rise in life expectation? When all these factors are taken into consideration, it will be found that a large percentage of the increase in business was not due to the efficiency of private enterprise, but due to improvement in environmental factors or better eliciting factors supplied by the Government's economic and social policies.

I would like to invite attention to an important statement made by the *Eastern Economist*. The *Eastern Economist* says :

> "The demand for insurance is, in a sense, a 'non-system' factor.... Enthusiastic sales promotion is a marginal factor. To elevate a marginal factor into a major determinant is a serious error."

Private enterprise says that it has salesmanship. They say that insurance is not something that people buy; it is

[Shri Asoka Mehta]

not a utility; insurance consciousness has to be created. May I point out that the *Eastern Economist* which is not a friend of nationalisation, has categorically stated that it is only a marginal factor and that it would be a serious error to elevate a marginal factor to the position of a major determinant.

I would like to draw your attention to a few reasons for nationalisation, supporting the arguments that have been ably put forward by the Finance Minister. I do not know if the report of the Cowasjee Jehangir Committee was published in 1945. Nor do I know why the evidence collected by that Committee was not made available. Yesterday, the Finance Minister told us about the mismanagement that has been taking place. In democracy, you must make it possible for the people to know what is happening. Surely, if you want an informed public opinion, if you want to carry the people with you, with the changes that you are making, you must make full facts available to the people. I do not know why when the Congress Party came to power it did not think it worth its while to make available the voluminous material that had been collected by the Cowasjee Jehangir Committee. We find that the Committee had found acquisition of interest in insurance companies by payment of exorbitant prices for shares, manipulation of life funds of insurance companies, payment of large emoluments to the financiers themselves or to officers of the company appointed by them, inter-locking between banks and insurance companies etc. If I had the time I would have quoted from the report, but I am sure the Finance Minister is fully cognizant of all that the Committee had to say. But what do we find? This inter-locking between banks and insurance companies has not only remained, but, if Shri Malaviya is to be believed in what he says in his very informative book *Insurance Business in India*, we find that the tie-up with big business has not only survived, but has become stronger. I find, for instance, that the control of the Birlas has grown and it included Bombay Life together with Ruby General and New Asiatic, which means in the last ten years while we were arming the Government with more and more powers this tie-up—surely it did not need the acceptance of a socialistic pattern of society to discover this tie-up and become conscious and be cautious about this tie-up—was not only permitted to remain, but was permitted to become stronger by the Finance Minister and his colleagues.

Then again, about the expense ratio, I would like to supplement what the Finance Minister said by saying that between 1934 and 1954 policies in India have increased 5·4 times. The sum insured has increased seven fold and the expense of management has also increased seven fold. The size of the policy has become larger, bigger but the expense of management seems to be a function purely of the sum insured and not of the size of the policies, which shows lack of possible economy. We reach the same conclusion when it is realised that expense ratio after a slight dip has gone up to 29·3 per cent in 1954 from 28·9 per cent of premium income in 1950. Large insurers in no way show more economy they are not more economical than small ones. There is greater difference in this matter only where renewal expense ratio is concerned.

When we come to lapse ratio—which is about 45 per cent today—I would like to invite attention to what the *Capital* had to say last year about it:

> "The disappointing conclusion emerges that a very large part of the new insurance is lost by lapses, particularly by ugly lapses."

Looking into the *Insurance Year Book* I find that in one particular company in 1951 the lapse ratio was 100 per cent and in 1952 94 per cent. In the United Kingdom between 1935 and 1944 the lapse ratio has gone down from 8·6 to 2·4 per cent per year.

I believe the Finance Minister did not tell us anything about the agents yesterday. May I, with your permission, fill up the lacuna? Forty per cent of the licences of insurance agents are not renewed, and if an enquiry had been made—I do not know why an enquiry of this kind was not made—it would have been found that 80 per cent of those who have licences were also *binami*. As the Finance Minister pointed out, we are experts in *binami* transactions. It is interesting to find that out of 119,000 licences issued in 1954, 38,409 or 32·2 per cent, licences were issued to women. I did not know that our women had begun to occupy 32·2 per cent of our professional life. This only shows to what extent it is *binami*. I do not know who are the men who are hiding behind the skirts. I wish an enquiry had

been made before nationalisation, perhaps we would have discovered some of the persons occupying positions in officials life also who have been hiding behind the skirts.

An Hon. Member: Sarees.

Shri T. N. Singh (Banaras Distt.—East) : That is not an unknown technique.

Shri Asoka Mehta: There has been a neglect of rural areas.

The average sum of policies issued in 1954 compared to 1953 has increased by Rs. 558. Instead of reducing our policies, we have been increasing their size. As the Finance Minister pointed out, in the United Kingdom nine out of every ten working class homes are insured. What the position is here he told us yesterday.

As far as investments are concerned two major charges were made by the Cowasjee Jehangir Committee: firstly, illicit gain made through purchase and sale of securities, and secondly, falsification of statements. Every three months under the law, a full statement has to be filed. I do not know why enough precautions were not taken. Perhaps the Finance Minister will turn round and tell me that even in England there was a classic instance where for eight years accounts were falsified systematically and the discovery was made only after a period of almost a decade. But there it was one instance, a rare instance, over which the whole country got exercised. Here it seems that in company after company mismanagement has been going on for the last ten years, and for the last five years our Finance Minister has been in charge of our financial destinies. I do not know why earlier and more effective steps were not taken.

A fear is expressed that now that life insurance has been nationalised, private enterprise will suffer; it will not get the financial assistance that it was accustomed to get from the insurance companies. In this connection, I would like to quote the *Capital*. It says :

> "Private industry generally might actually benefit from a better distribution of investment which admittedly under former arrangements tended to go exclusively to concerns in which the managements of the insurance companies were interested."

I believe after nationlisation it should be possible for us to help the private sector more rationally, more effectively and in a planned fashion. I believe that private enterprises that are being carried on in a proper manner should have no fears whatsoever, on the contrary should be happy that life insurance has been nationalised, because the element of favouritism, I hope will be reduced as *Capital* has contended. Fifty-five crores of rupees are invested today in private enterprise, in debentures, in preference shares and in equity capital. The Finance Minister has said in his broadcast that this amount will be continued. I hope not only the amount but perhaps the proportion, the ratio may also be continued.

As a matter of fact, it was Sir James Grigg—I have not the time just now, otherwise I would have quoted a very interesting paragraph from his writing—who called nationalisation of insurance socialism with a vengeance. In a sense it is socialism with a vengeance because there is no longer a private sector and a public sector. The public sector infiltrates, penetrates the private sector, and if the recommendation of the Estimates Committee is accepted—and I would like it to be accepted—even in nationalised enterprises about 30 per cent of the capital may be raised from private sources; if on both sides the pattern changes like this, then we shall not be having a private sector distinct from the public sector; no more will there be coexistence, but there will be increasing approximation. And I believe that seems to be the policy of the Government because in the draft outline of the Plan we are told that the two sectors are not going to subsist just side by side, but they are going to inter-penetrate. Nationalisation of life insurance provides one of the most effective means of inter-penetration between the public sector and the private sector.

The Finance Minister yesteray, perhaps for lack of time, did not refer to foreign experience of nationalisation. I would like to strengthen his case by inviting the attention of the House to the efforts, to the successful attempts at nationalisation carried out in the different countries of the world. In Denmark, as early as 1842, a State life office was set up. It has been functioning there for 114 years now; and 27 per cent of the total business in that country is done by that life office even today. In New Zealand, a State life office was set up as early as 1869, and 71·3 per cent of the

[Shri Asoka Mehta]

business in that country is done by that State office. In Italy, a State insurance unit called INA—the Italian name is rather difficult to pronounce—was set up in 1912, and 63 per cent of the total life business was done by this company in 1938, the last normal year before the war. In Australia, there were five State insurance composite offices set up in 1920, but the business they do is only fractional. In France, 34 main insurance companies were nationalised in 1946, and 60 per cent of the entire business in that country is done ,by these nationalised concerns.

Shri Matthen (Thiruvellah): May I know whether there is any private sector in those countries?

Shri Asoka Mehta: I have been giving the percentages to enable my colleague to understand that what is not nationalised is in the hands of the private sector. But I am coming to that in a minute.

Shri N. C. Chatterjee (Hooghly): There is coexistence, of course.

Shri Asoka Mehta: In France, it is true that only 34 main insurance companies were nationalised, which were responsible for 60 per cent of the entire insurance business. But that was done because of the fact that the government was a coalition government. The socialists and the communists who were in government at that time were for total nationalisation, but the radicals were opposed to it, and therefore a compromise had to be made. I see no reason why when radicals seem to be playing such an insignificant part in our Parliament, we should think in terms of those compromises. I would also like to point out that between 1947 and 1953, that is, during a period of six or seven years, there has been a fourfold increase in premium income of France in the nationalised sector. The Finance Minister told us yesterday that he expects that there will be an eightfold increase here in the next ten years. As far as the French nationalised insurance sector is concerned, that is not a question of expectation, but it belongs to the realm of achievement.

In the U K my friends the socialists were advocating nationalisation for a long time. But recently they have given up the idea. Why did they do so? There are special reasons for that. In the U.K. the idea was given up because of the substantial contribution made by insurance to the foreign exchange assets of the country. The industrial life assurance companies alone earned as much as £20 million of foreign exchange. Our insurance business in foreign countries is limited; it is not likely to grow. I believe that the inhibitions from which the British public has suffered in the matter of nationalisation of insurance do not apply to us.

As far as compensation is concerned—perhaps the question does not arise now, it will arise when we take up the next Bill—may I point out that the share capital of insurance companies is Rs. 10·5 crores? The shareholders have been earning very large dividends. I would like to invite your attention and that of the House to the very high dividends that shareholders of insurance companies have been earning. And there is something more important than this.

I believe the Finance Minister—if I am not mistaken—had warned the companies in 1950 when the Insurance Act was amended that if the insurers did not behave properly, if their management was not set right, Government might have to take drastic action later on. In this connection, the *Indian Finance* in its issue of 4th February 1956 says :

> "Insurance companies did not take the warning seriously, nor did they as a rule behave."

Capital in its issue of 26th January 1956 says :

> "The industry has undoubtedly given provocation."

After all, the industry does not mean merely those who manage the industry. The shareholders also are part of the industry. They were given notice; they were given a warning five years back saying, look here, your managers are misbehaving. But neither the managers nor the shareholders took the warning seriously, nor did they as a rule behave. They have given cause for provocation. This is not what Asoka Mehta, a socialist, who reads only books and who has no practical experience as my hon. friend Shri Tulsidas is only too anxious to assert, says. This is what the learned journals of high finance in this country have to say. And they say that these insurance companies have misbehaved and they have given cause for provocation. Are we now going to give the shareholders a high compensation?

Before we are asked to decide the quantum of compensation, I would like the Finance Minister to tell us how far

these serious allegations made by highly responsible journals are valid or otherwise.

Shri S. S. More (Sholapur): Is that an allegation?

Shri Asoka Mehta: Is it not all allegation when it is said that they misbehaved and they took no notice of the warning? If that is not an allegation, then I am afraid I cannot convince my hon. friend.

Shri S. S. More: It is a confession.

Shri N. C. Chatterjee: *Post mortem* confession.

Shri Asoka Mehta: The last point that needs to be met is this. I do not know why only life insurance has been nationalised.

The Cowasjee Jehangir Committee made a distinction between life insurance and general insurance. The distinction is important; I agree; and I grant it. Life insurance has a great element of trust funds in it; general insurance is more or less of routine business character.

But may I point out that there is greater concentration in general insurance than in life insurance? In life, 5 top companies account for 54 per cent of the business in force, and 50 per cent of the total funds; but in general insurance, just one company accounts for 19 per cent of the premium paid and 34 per cent of the insurance funds.

Secondly, the share of foreign countries and foreign companies in general insurance is far greater than in life insurance. Then again, general insurance is much more profitable than life insurance. As a matter of fact, if we study the balance-sheets of the composite companies, we shall find that the composite companies were able to give high dividends mainly because of the large profits made by the general insurance being set off against the low profits made by the life insurance companies.

There are greater abuses in general insurance. If I had the time, I would read out to you any number of instances. But I would just invite your attention to what Shri Malaviya has to say in his book at page 32. That book is very well informed and ably written; and it shows a considerable insight into the problem.

That is the reason why I feel we can quote it usefully.

May I also point out that a number of general insurance companies are merely subsidiaries of the life insurance companies? Now that the life companies are nationalised, I believe those subsidiaries also are nationalised. May I suggest that we bring them together and we set up another corporation for the general insurance, so that to borrow the words of the Finance Minister used on another occasion, we may have an opportunity of having an inward look into the working of the general insurance also.

I am anxious to give my friend Shri Tulsidas and others who may be interested, a taste of competition also. Let them run the general insurance part. The State will also have a corporation of its own. As far as life insurance is concerned—the insurers contend that the State has taken over everything, we have monopolised everything, and they will now not get an opportunity to show what they are capable of. So, in general insurance at least, let us give them an opportunity. I am a believer in experimentation. I like our people—and that is the only way in which a democracy can function—to judge things by results. We shall judge the tree by the fruit it bears. Therefore in our vineyard, let there be both the trees. As far as general insurance is concerned, let us judge them by results, by the efforts.

Shri N. C. Chatterjee: Why not in life companies?

The Minister of Finance (Shri C. D. Deshmukh): We cannot cope with stolen fruit.

Shri Asoka Mehta: Let us show it to them that we can do better than they can.

I have not so far been able to understand from the Finance Minister as to what he proposes to do with the general insurance companies whose capital is virtually entirely owned and operated by the life companies. As to what role he is going to assign to them, I hope he will make clear before we conclude our discussion on this Bill.

The last point I have to make—perhaps I have to make it while the next Bill is considered—is this. I do not know how we can talk of nationalisation of insurance and leave nationalisation of banking where we have left. I hope if not on this occasion, on some future occasion I shall have an opportunity of saying something on that problem.

श्री झुनझुनवाला (भागलपुर-मध्य) : सभापति महोदय, हमने जो अपना समाजवादी ढंग की समाज व्यवस्था कायम करने का लक्ष्य रखा है, उसको पाने के लिए सब से पहला जो कदम उठाना चाहिये था वह था इनश्योरेंस के व्यवसाय (बीमा व्यवसाय) का राष्ट्रीयकरण और हमारी सरकार ने इसका राष्ट्रीयकरण करने के बारे में जो स्टेप (कदम) उठाया है, उसको मैं बिल्कुल ठीक समझता हूं और इसका स्वागत करता हूं। मैं नहीं समझ सकता था कि सरकार के मन में यह बात अब तक क्यों नहीं आई कि इसका राष्ट्रीयकरण किया जाये। यह एक ऐसा व्यवसाय था जिसका कि अगर राष्ट्रीयकरण हो जाता तो अच्छी अच्छी चीजें हमारे देश में हो सकती थीं, जो रुपये इस व्यवसाय में रहते उसका इस्तेमाल देश उत्पादन बढ़ाने में कर सकते थे। इस से प्राप्त होने वाली रकम को हम सुचारू रूप से इस्तेमाल कर सकते थे, तो मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इस मामले में देर क्यों की जा रही है। अब जब कि राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है, मैं इसे ठीक समझता हूं और इसका स्वागत करता हूं। परन्तु इन सब चीजों को करने में एक नाटक सा रचा जाता है, वह हमारी समझ में नहीं आता। १२ बजे रात के एक आर्डिनेंस (अध्यादेश) निकाला जाता है और इसमें यह सब चीजें दी जाती हैं। क्या कारण है कि रात के १२ बजे उठकर यह आर्डिनेंस निकाला जाता है कि लाइफ इनश्योरेंस नेशनलाइज़ (जीवन बीमे का राष्ट्रीयकरण) हो गया जिस का कि लोगों को सुबह उठकर पता चलता है ? क्या वजह है कि जब हमारे भाई श्री फिरोज गांधी ने सब त्रुटियां यहां इस सभा में रख दी थीं तो उसके बाद तुरन्त ही एक बिल विधेयक इस सदन में नहीं लाया गया और क्यों हम को उस पर अपने विचार रखने का अवसर नहीं दिया गया? जब यह आर्डिनेंस रात को १२ बजे निकाला गया तो उसका नतीजा यह हुआ कि दूसरे दिन शेयर मार्किट में एक तहलका सा मच गया और लोगों को शक होने लगा कि क्या कारण है कि रात के वक्त आर्डिनेंस जारी किया गया है.....

श्री सी० डी० देशमुख : राष्ट्रीयकरण तो अभी हुआ नहीं है।

श्री झुनझुनवाला : जो आर्डिनेंस निकाला गया था उससे यह बात लोगों को ध्यान में आ गई थी कि अब राष्ट्रीयकरण होगा। व्यवसायी लोग जो होते हैं उनको थोड़ी सी तो अक्ल होती है और वह इस बात को आसानी से समझ जाते हैं कि आगे क्या होने वाला है।

तो जब यह सब चीज अचानक हुई तो कुछ लोगों ने इसका फायदा उठाया और अपने शेयर बेचने शुरू कर दिये। इसका नतीजा यह हुआ कि शेयर मार्किट गिरनी शुरू हो गई। हलचल मच गई और किसी को यह पता नहीं था कि शेयर का बाजार अब किधर जायेगा। कुछ बातें सरकार की ऐसी होती हैं जो कि बहुत छिपा करके रखी जाती हैं और मेरी समझ में नहीं आता कि इनको छिपा कर रखने की क्या आवश्यकता सरकार महसूस करती है। सरकार के मन में शायद यह है कि अगर वह अपना निर्णय पहले बता देती तो इस पर चर्चा होने लग जाती और लोगों को पहले से मालूम हो जाता कि यह चीज होने जा रही है। परन्तु जो चीज अचानक होती है उसका नतीजा यह होता है कि दो चार आदमी उस से लाभ उठा लेते हैं। जब सब को मालूम हो जाता है तो बात दूसरी हो जाती है।

श्री सी० डी० देशमुख : अचानक कब मालूम हुआ ?

श्री झुनझुनवाला : जब आर्डिनेंस निकला उसके बाद।

श्री सी० डी० देशमुख : दो तीन आदमियों के सामने वह आर्डिनेंस रखा गया है, ऐसा आपका कहना है ?

श्री झुनझुनवाला : मैं नहीं कहता कि आपने दो तीन आदमियों के सामने इसे रखा। मगर जो हुआ वह यह है कि यह चीज अचानक लोगों के सामने आई। दो तीन आदमियों के सामने इसे रखा गया होगा, इस को मैं नहीं मानता हूं और न ही इस चीज पर मैं विश्वास करने के लिये तैयार हूं कि उनके सामने इसे रखा गया था। मैं कभी सपने में भी विश्वास नहीं कर सकता कि ऐसी बात हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब के रहते हो सकती है। परन्तु ऐसा हो जाता है कि दो तीन आद ी इस स्थिति से फायदा उठा लेते हैं, क्यों और कैसे फायदा उठा लेते हैं, यह मैं नहीं कह सकता। कैबिनेट में भी बहुत सी बातें होती हैं और उनमें से कुछ निकल बाहर भी आ जाती हैं। तुलसी दास जी को मालूम हो जाता है या किसी दूसरे को मालूम हो जाता है, यह मैं नहीं कहता और न मैं विश्वास करता हूं कि किसी को इसके

बारे में बताया भी गया होगा । परन्तु इस चीज को अचानक क्यों किया गया, इस बारे में मैं फाइनेंस मिनिस्टर साहब से पूछना चाहता हूं और मुझे आशा है कि वह इस पर अवश्य रोशनी डालेंगे ।

यह जो राष्ट्रीयकरण किया गया है इसके बारे में फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने दो एक बातें कही हैं । उन्होंने एक तो यह कहा है कि हम जो समाजवादी नकशे की समाज कायम करना चाहते हैं, यह चीज उसके अनुकल है । परन्तु जो तात्कालिक कारण उन्होंने इस चीज को करने का दिया है वह यह है कि बहुत सी बुराइयां पाई गई हैं । कुछ बुराइयां हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने अपनी स्पीच (भाषण) के दौरान में बयान भी की हैं । यह जो तात्कालिक कारण उन्होंने बताया है यह मेरी समझ में नहीं आया । क्या जो १०-१० बार हमने इनश्योरेंस एक्ट को एमेंड किया उसका कुछ भी अच्छा असर नहीं हुआ ? क्या यह जो बुराइयां देखने में आईं यह अभी आई हैं पहले कभी नहीं आईं ? यदि यह बुराइयां पहले सामने आई थीं तो क्या कारण है कि पहले इन बुराइयों को दूर करने का कोई रास्ता नहीं खोजा गया ? क्या कारण हैं कि पहले राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया ? हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने कहा है कि जितनी भी पावर्ज (शक्तियां) सरकार को अभी तक दी गई थीं वह सब नेगेटिव्ह पावर्ज (नकारात्मक शक्तियां) थीं । यही वजह थी कि सरकार अच्छी तरह से जांच पड़ताल नहीं कर सकती थी और लोग जो गड़बड़ी करते थे उनको वह पकड़ नहीं सकती थी । उन्होंने यह भी कहा कि वे लोग कानून के प्रावीजन्स (उपबन्धों) से बच निकलते थे । मेरा कहना यह है कि जब सरकार कुछ पावर्ज अपने हाथ में लेती है तो क्या कारण है कि वह उनका अच्छी तरह से और सही ढंग से तथा सख्ती से प्रयोग नहीं करती है ? जब सरकार यह कहती है कि हम असमर्थ हैं तो यह बात मेरी समझ में नहीं आती है । अब जब कि सरकार इस व्यवसाय को अपने हाथ में लेने जा रही है तो मेरी समझ में नहीं आता कि वह इसमें कैसे शुद्धता ला सकेगी । चाहे जो भी कमियां हों जो यह राष्ट्रीयकरण किया गया है, मैं कहना चाहता हूं, कि मैं इसका स्वागत करता हूं क्यों कि काम करने से ही त्रुटियां नजर में आयेंगी और उन्हें दूर किया जा सकेगा । परन्तु साथ ही साथ मैं यह भी पूछना चाहता हूं कि जब इतने कानून बने हुए थे और सरकार के हाथ में इतनी शक्ति थी तो अवश्य ही जो कानून को एडमिनिस्टर (प्रशासित) करने वाले हैं क्या उनमें यह शक्ति नहीं थी कि वह इन सब चीजों को पहले से ही ला कर सरकार को समझा देते और जो लोग गलती करते थे उनको वह पकड़वा देते ।

एक बात हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने बड़े मार्के की कही । उन्होंने कहा कि यह जो इंश्योरेंस (बीमा) के काम में बुराइयां हो रही हैं ये न हों यदि कम्पनियों में जो अधिकारी हैं वे भीतर से यह समझें कि जो रुपया वे जनता से लेती हैं उसके वे ट्रस्टी (न्यायी) हैं । उनका मतलब यह था कि आदमी में भीतर से ईमानदारी आनी चाहिए तभी काम ठीक हो सकता है । और जब तक यह बात नहीं होगी तब तक काम ठीक नहीं हो सकता । हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने अन्य देशों का उदाहरण दिया और बतलाया कि वहां पर लोग अपने को ट्रस्टी समझ कर काम करते हैं । उन्होंने कहा कि अभी तक हमारे अन्दर इस प्रकार का कांशेंस डेवलप (भावना का विकास) नहीं हुआ है कि हम ईमानदारी से काम करें । वे कहते हैं कि हमारे व्यापारी लोगों का कांशेंस अभी डेवलप नहीं हुआ है कि वे ईमानदारी से काम करें । इस सिलसिले में मैं बहुत अदब के साथ यह कहूंगा कि इसके साथ ही यह भी देख लिया जाये कि जो लोग हमारे एडमिनिस्ट्रेशन में और अन्य अन्य राष्ट्रीय कारपोरेशन्स आदि में काम कर रहे हैं उनका कांशेंस किस प्रकार का है । यह देखना चाहिए कि वहां पर कितना नुकसान हो जाता है और कितना बेकार खर्चा किया जाता है । मैं सरकार को आगाह कर देना चाहता हूं कि इस काम को हाथ में लेते हुए वह इस चीज पर विशेष रूप से ध्यान दे, नहीं तो बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है और इससे सरकार की बदनामी होगी । हम एक बहुत बड़ी चीज का राष्ट्रीयकरण कर रहे हैं लेकिन अगर इसका एडमिनिस्ट्रेशन करने वालों के मन में वह भावना नहीं रही जो कि फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने बतलायी है, तो जिन लोगों को आज हम बदनाम कर रहे हैं उनको हमारी आलोचना करने का मौका मिल जायेगा । मैं समझता हूं कि यह ज्यादा अच्छा होता यदि इसमें से कुछ काम सरकार इंश्योरेंस कारपोरेशन (बीमा निगम) बनाकर अपने हाथ में लेती और कुछ काम प्राइवेट एंटरप्राइज (गैर सरकारी उपक्रम) के लिए रहने देती । ऐसा करने से यह मालूम हो सकता कि किस तरफ ज्यादा खराबी है और

[श्री झुनझुनवाला]

किस तरफ ज्यादा अच्छा काम हो रहा है । और इसमें कम्पिटीशन (प्रतियोगिता) की वजह से कुछ डर भी रहता ।

मैं आपको बतला देना चाहता हूं कि यह जो राष्ट्रीयकरण किया गया है मैं एक दम इसके पक्ष में हूं । लेकिन म यह कह देना चाहता हूं कि जिस तरह से पबलिक सेक्टर (सरकारी क्षेत्र) में आज काम हो रहा है, जिस तरह से बड़े बड़े प्रोजेक्टस (परियोजनाओं) में काम हो रहा है, जिस तरह से इंडस्ट्रियल फाइनेंस कारपोरेशन (औद्योगिक वित्त निगम) में काम हो रहा है, मैं यह बात जनरल (सामान्य) तरीके से कहता हूं जो सभी जानते हैं। विस्तार रूप से कहने को समय नहीं है। तो आज जैसी इस व्यवसाय की हालत व्यापारियों के फायदा उठाते हुए भी है वैसी भी नहीं रहने वाली है । इसको ओर सरकार को खास तौर से ध्यान देना चाहिए ।

जब सरकार के किसी काम के बारे में आलोचना की जाती है तो हमारे शाह साहब उठकर कह देते हैं कि कोई स्पेसिफिक (विशिष्ट) उदाहरण बतलाया जाय । यह एक सेट जवाब सा हो गया है । कभी कभी स्पेसिफिक उदाहरण भी बतलाया जाता है लेकिन उसके बारे में कोई लीगल प्रूफ (वैध प्रमाण) तो नहीं हो सकता । हमारे टंडन जी ने एक उदाहरण संसद के सामने रखा था कि किस तरह से बुराइयां हो रही हैं परन्तु आखिर उसका क्या हुआ ? यदि इसी प्रकार यह काम भी हुआ और जो एडमिनिस्ट्रेशन की आलोचना की जाती है उस पर गम्भीरता से ध्यान न दिया गया और उसकी बुराई को दूर करने की कारवाई न की गयी तो हमको लगता है कि इस काम में दिक्कत हो जायेगी ।

अब हमको यह देखना है कि यह जो भीतर का कांशेंस है वह किस तरह से ईमानदार हो । मथाई साहब के समय में यहां करप्शन (भ्रष्टाचार) के बारे में बहुत चर्चा होती थी । उस वक्त उन्होंने कहा था कि संसद में हम चाहे जितने कानून बनावें, चाहे एक दूसरे को जितनी भी गालियां दें पर इससे कुछ नहीं होगा । इन बुराइयों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम लोग अच्छे ट्रेडिशन क्रियेट करें (अच्छे उदाहरण बनावें) । हम ऐसी भावना पैदा करें कि जो लोग इस प्रकार का काम करते हैं, उनको चाहे कानून द्वारा सजा न हो सके पर उनको समाज में आदर का स्थान न दिया जाये जैसा कि एक ईमानदार आदमी को दिया जाये । आज कल तो यह हो रहा है कि जो ईमानदारी से काम करता है उसको लोग बेवकूफ समझते हैं और जो बेईमानी से काम करता है उसको समाज में भी बड़ी से बड़ी जगह दे दी जाती है । मैं यह किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं कह रहा हूं । परन्तु हमको इस भावना को लाने की चेष्टा करनी चाहिए कि बुरा काम करने वाले यह समझें कि यदि वे ऐसा करेंगे तो समाज में उनका कोई स्थान नहीं है ।

मैं आपको बतलाता हूं कि जब सन् १९३७ में सूबों में कांग्रेस की हुकूमत आयी तो उस समय मैं किसी सूबे का नाम तो नहीं लूंगा, एक धमधमा सा मच गया और कहा जाता था कि अब कांग्रेस की मिनिस्ट्री आ गयी है, अब अगर कोई ऐसी बुरी बात हुई तो बड़ी भारी आफत आ जायेगी । लोग उस समय गलत काम करने से डरने लगे थे । परन्तु जब लोगों ने सूबों में पार्टियों की पालिटिक्स (दल बन्दी) को देखा तो उनके मन में यह बात आयी कि अगर हम पहले की तरह ही काम करते जायें तो कोई डर नहीं है और उस समय यहां तक कहा जाने लगा कि ब्रिटिश काल में जो इस तरह की बुराइयां थीं वे और ज्यादा बढ़ गयी हैं ।

ठाकुर युगल किशोर सिंह मुजफ्फरपूर)—उत्तर-पश्चिम) : यह ठीक ही है ।

श्री झुनझुनवाला : यह तो मैं नहीं कह सकता । पहले भी ये बातें थीं और उसी समय की ये देन है ।

मैं यह कह रहा था कि हम लोगों ने इंश्योरेंस (बीमा) के राष्ट्रीयकरण की दिशा में यह बहुत बड़ा कदम उठाया है और इस काम में फाइनेंस मिनिस्टर साहब को स्कीम (योजना) के अनुसार जनता के आम लोगों का रुपया आवेगा । अगर देहात में जा जा कर अच्छी तरह से फील्ड वर्क (क्षेत्रीय कार्य) किया जाये तो इसमें बहुत रुपया आवेगा । देहातों में लोगों के पास अपना रुपया सुरक्षित रखने के लिए स्थान नहीं होता, वे छान आदि में रुपया रखते हैं जिससे उनका नुकसान हो जाता है । अगर देहात में काफी फील्ड वर्क किया जाय तो काफी रुपया मिल सकता है । परन्तु मेरा फिर भी यह कहना है कि जिस प्रकार अभी तक बड़े बड़े प्राजेक्टस (परियोजनायों) में और इंडस्ट्रियल फाइनेन्स कारपोरेशन (औद्योगिक वित्त निगम) में काम हुआ है, जहां कि करोड़ों रुपयों का नुकसान हो जाता है, यदि उसी तरह से यहां भी काम

हुआ तो बहुत बड़ा नुकसान होने वाला है। यदि यह सक्सैसफुल (सफल) हुए और हमारे जो ऐडमिनिस्ट्रेटर्स (प्रशासक) हैं उन्होंने योग्यता-पूर्वक अपने कर्तव्य को निभाया तो हम यकीनन अपने मकसद में कामयाब होंगे। हमारे फाइनेंस मिनिस्टर ने एक बड़े मार्के की बात कही कि यह चीज तभी ठीक से चल सकती है जब इसके चलाने वाले लोग यह समझ कर काम करें कि यह रुपया दूसरे का है, हमको ईमानदारी से काम करना चाहिए, और अगर हमने उसमें जरा भी असावधानी बर्ती या गड़बड़ी की तो हमें पाप लगेगा और हमारा यह एक बड़ा अनैतिक काम होगा। लेकिन अगर हमने अनैतिकता को पाप न समझा और ईमानदारी से काम न लिया तो बड़ा धपला होने वाला है। बस मैं इतना ही कह कर अपने फाइनेंस मिनिस्टर साहब को बधाई देता हूं और इस बिल का समर्थन करता हूं। पर जो दो बातें मैंने कही हैं उन पर फाइनेंस मिनिस्टर और हमारे पबलिक एडमिनिस्ट्रेटर्स (सार्वजनिक प्रशासक) पूर्ण रूप से ध्यान रक्खें ताकि हम लोग जिनका कि काम हमने अपने हाथ में लिया है उन लोगों को यह कहने को न हो जाये कि आपने हमारा काम हमसे ले तो लिया लेकिन जिस खूबी से हम उसको चला रहे थे आप नहीं चला सके और उसको खराब कर दिया।

ठाकुर युगल किशोर सिंह : सभापति महोदय, जो बिल (विधेयक) हमारे सामने पेश किया गया है, उसमें एक चीज की कमी मैं देखता हूं। उस की तरफ मैं माननीय मंत्री का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। प्लानिंग कमिशन की रिपोर्ट (योजना आयोग का प्रतिवेदन) मैंने देखी है और उसकी ड्राफ्ट आउटलाइंस (मसविदे की रूपरेखा) को पढ़ा है। उसमें कहा गया है कि प्राइवेट सेक्टर (गैर सरकारी क्षेत्र) और पबलिक सेक्टर (सरकारी क्षेत्र) के साथ साथ एक कोआपरेटिव सैक्टर (सहकारी क्षेत्र) का निर्माण होगा और कोआपरेटिव्स (सहकारी सभाओं) के द्वारा हमारा बहुत कुछ काम चलेगा। हमने बहुत पहले अपना मकसद एक कोआपरेटिव कामनवेल्थ (सहकारिता पर आधारित समाज) बनाने का तय किया था और उसके बाद भी आज जो एक सोशलिस्ट सोसाइटी (समाजवादी रूपरेखा का समाज) की बात कही जाती है, उसमें कोआपरेटिव का मुख्य स्थान है। यह चीज साफ हो चली है कि आज के दिन वही समाज कायम रह सकता है जो पारस्परिक सहयोग के आदान प्रदान के आधार पर स्थापित किया जायेगा। केवल कानून के सहारे और सिर्फ सरकारी अफ़सरों के हाथ में सारी चीजे रखकर आप उसे उस योग्यता और खूबी के साथ नहीं बना सकते हैं जिस योग्यता और खूबी के साथ आप उसको कोआपरेटिव के सहारे चला सकते हैं। अभी थोड़े दिन हुए सारे भारत-वर्ष की कोआपरेटिव इंश्योरेंस सोसाइटियों (सहकारी बीमा समितियों) का एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ था और उसमें उन्होंने यह तय किया था कि हिन्दुस्थान में जितनी कोआपरेटिव बीमा सोसाइटियां हैं, उनका एकीकरण किया जाये और एकीकरण के आधार पर आगे काम हो। मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि जिन बुराइयों का अर्थ मंत्री ने हवाला दिया है और जिनके कि कारण उन्होंने इंश्योरेंस कम्पनीज के मैनेजमेंट (प्रबन्ध) को अपने हाथ में लिया है और नेशनलाइजेशन (राष्ट्रीय-करण) से जो फायदा वे समझते हैं कि उनको होने वाला है और जो वे समझते हैं कि ऐसा कदम उठाने से हमारे पास काफी रुपया आयेगा और लोगों का विश्वास हम पर जमेगा, लोगों का सहयोग हमें मिलेगा, मैं समझता हूं कि यह सब बातें कोआपरेटिव इंश्योरेंस सोसाइटियां जितनी हैं उन पर लागू होती हैं। आप कहते हैं कि ऐसी कम्पनियां बहुत ज्यादा प्राफिट (लाभ अर्जन) कर रही हैं लेकिन जहां तक कोआपरेटिव्स का सवाल है, मैं बतलाना चाहता हूं कि कोआपरेटिव सोसाइटियों के प्राफिट के ऊपर बहुत बड़ा प्रतिबंध है। उनके ऊपर रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसाइटीज होता है जो उनके काम की देखरेख रखता है। इंश्योरेंस ऐक्ट (बीमा अधिनियम) के अलावा कोआपरेटिव ऐक्ट का प्रतिबंध उन पर होता है और अफसरान बराबर उन पर नियंत्रण रखते हैं और उनके काम आदि की बाबत जांच वगैरह करते रहते हैं। जहां तक उनकी आय व्यय के निरीक्षण का सवाल है, वह भी सरकारी अफसरों द्वारा होता है और सरकारी आडिटर (लेखा परीक्षक) उनके आय व्यय का निरीक्षण करते रहते हैं। अगर कुछ प्राफिट निकलता है तो इंश्योरेंस के बीच में वह बंट जाता है। देहातों में जहां पर बहुत कम आय वाले लोग रहते हैं उन लोगों ने कोआपरेटिव सोसाइटियां कायम की हैं और उनको चलाने की कोशिश की है और जो पैसा उससे पैदा होता है वह समाज कल्याण के कामों में खर्च किया जाता है। सोसाइटीज के जो मेम्बर होते हैं उनके ऊपर किसी तरह का सरचार्ज नहीं लगाया

[ठाकर युगल किशोर सिंह]

जाता है अगर उसे रकम वापिस देने में कुछ विलम्ब भी हो जाता है । सोसाइटी में लोगों को उस की ईमानदारी और नेकनीयती में विश्वास रहता है क्योंकि अखिर सब लोगों के सहयोग पर ही तो यह सोसाइटियां चलती हैं । हमारा और अर्थमंत्री महोदय दोनों का जो यह मकसद है कि ज्यादा से ज्यादा लोग हमें सहयोग दें, ईमानदारी से काम हो और ज्यादा योग्यता से उस काम को चलाया जाये तब मैं समझता हूं कि उन्होंने जो इस ऐक्ट द्वारा सारा कार्यभार अपने हाथ में लेने का इरादा किया है, उससे इन कोआपरेटिव सोसाइटीज को अलग कर दें तो हम अपने मकसद में कामयाब होंगे और तब कोआपरेटिव सेक्टर (सहकारी क्षेत्र) का अच्छा विकास इस देश में हो सकेगा और प्लानिंग कमिशन (योजना आयोग) ने जो लक्ष्य और उद्देश्य देश के सामने रक्खा है, वह पूरा हो सकेगा ।

पंडित के० सी० शर्मा (जिला मेरठ–दक्षिण): सभापति महोदय, मैं वित्त मंत्री महोदय को इसके लिए बधाई देता हूं कि उन्होंने इस इंश्योरेंस (बीमा) के व्यवसाय को राष्ट्रीयकरण करके अपने हाथ में लिया । कुछ क्षेत्रों में तो यह कहा जा रहा है कि इन प्राइवेट (गैर सरकारी) कम्पनीयों ने बहुत अच्छी तरह काम किया और उसके लिए वे जनता की बधाई की पात्र हैं, मैं इसमें उनसे सहमत नहीं हूं और उसका कारण यह है कि किसी आदमी या किसी संस्था ने कैसा काम किया, वह तो अन्य देशों में उसी किस्म के व्यवसाय में लगी हुई संस्थाओं और उनमें काम करने वालों के काम से मुकाबला करके जाना जा सकता है । इस सम्बन्ध में जो फीगर्स (आंकड़े) हमारे फाइनेंस मिनिस्टर (वित्त मंत्री) साहब ने दिये उनके देखने से यह मालूम होता है कि किसी भी तरीके से हमारे देश के इंश्योरेंस के व्यवसाय में लगे हुए काम करने वालों ने कोई ऐसा प्रशंसनीय काम नहीं किया और ऐसी कोई प्रगति नहीं दिखलाई जिसके कि लिए वे बधाई के पात्र कहे जा सकते हों । यह उन लोगों के लिए बड़े शर्म की बात है कि उस व्यवसाय में जो देश की जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा लगा हुआ है और जो उनके पास धरोहरस्वरूप मौजूद हो और हमारे यहां बहुत प्राचीन समय से जो यह चीज चली आ रही है कि जो अमानत अथवा धरोहर का रुपया हो, उसको बहुत सम्भाल कर रखना चाहिए और उसको एक धर्म की नीति से और नैतिकता की नीति से देखना चाहिए और उसका दुरुपयोग न करना चाहिए, उसको गलत तरीके से इस्तेमाल न करना चाहिए, इस तरह की बहुत पुरानी प्रथा हमारे देश में चली आई है, उसके बावजूद उस अमानत और धरोहर के रूप में रक्खे हुए रुपये का दुरुपयोग किया जाये, उसके सम्बन्ध में बदनीयती से काम किया जाये और उस रुपये का अपने व्यक्तिगत लाभ के स्वार्थवश इस्तेमाल किया जाये तो यह उन्हीं लोगों के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश के लिए लज्जाजनक बात है । आज के दिन हमारा देश एक ऐसी जगह खड़ा है जिस पर कि कोई भी देश गर्व कर सकता है और दुनिया में आज हमारी जो ख्याति है अगर हमें उस ख्याति को बनाये रखना है और देश का नवनिर्माण करना है और अपने देश को उन्नति के पथ पर अग्रसर करना है और प्रगतिशील देशों की अग्रिम पंक्ति में ले जाकर उसको खड़ा करना है तो उसके लिए जरूरी हो जाता है कि हमारे ईमानदारी से काम करने के तरीके का और हमारी काबिलीयत के साथ अपने काम को अंजाम देने का सिक्का सारी दुनिया में जम जाना चाहिए । मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि उस तमाम ब्योरे और वर्णन से जो कि फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने हमारे सामने पेश किया, उससे हमारे देश की ख्याति को धक्का पहुंचता है और हमारा देश नीचे गिरता है । यह प्रश्न केवल एक इंश्योरेंस या एक आध व्यवसाय का नहीं है बल्कि इसमें खराबी होने से और ठीक से काम न होने के कारण हमको जो क्रेडिट मिलने वाला है उसको धक्का पहुंचता है और उससे हमको अधिक हानि पहुंचती है, बजाय उस ५० करोड़ या १०० करोड़ रुपये के, जिसको कि लालच में आकर कोई बदमाश आदमी, कोई बदनीयत आदमी या कोई चालाक आदमी नफा कमा सकता है । यह कुछ चन्द आदमियों के नफा कमाने का प्रश्न नहीं है, बल्कि देश का जो क्रेडिट (श्रेय) है, जो देश की ख्याति है, देश में जो काम करने का तरीका है और देश में जो काम कर के सफलता प्राप्त करने की नीति है, उस को धक्का पहुंचता है, और जिस परिस्थिति में आज हम हैं वह इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकती है कि हमारी ख्याति, हमारा क्रेडिट, संसार में गिरने पावे ।

एक प्रश्न उठता है, जैसा कि झुनझुनवाला साहब ने कहा, कि साहब, यह काम अचानक तरीके से क्यों किया गया ? अशोक मेहता साहब ने कहा कि हम लोगों को कान्फिडेन्स में क्यों नहीं लिया गया, हम लोगों से राय क्यों नहीं ली गई ?

मैं समझता हूं कि इस मामले में हमारे फाइनेन्स मिनिस्टर (वित्त मंत्री) साहब और हमारी सरकार बधाई की पात्र हैं। उन्होंने जल्दी से जल्दी काम किया क्योंकि उन को डर था कि बहुत कुछ ऐसी जोड़ तोड़ हो सकती है जिस से जनता को नुकसान पहुंचता। यह प्रश्न कि हम इस को नैशनलाइज करेंगे, इस को राष्ट्रीय प्रबन्ध में लेंगे, यह बात जनता के सामने थी और कोई समझदार आदमी नहीं था जो ऐसा समझता हो कि एक न एक रोज जल्दी ही यह सरकार इस व्यवसाय पर कब्जा करेगी। सरकार के लिये कब्जा करना जरूरी हो गया, इस लिये कि जहां तक आर्थिक, सामाजिक तथा एडमिनिस्ट्रेटिव (प्रशासनिक) सवाल है, उनको कुछ दिन के लिये टाला भी जा सकता है, कुछ उस की तहकीकात कर सकत हैं, उसके अनुसार हम नफा दे सकते हैं, उस के अच्छे काम करने का तरीका निकाल सकते हैं उस को एक या दो साल के लिये छोड़ सकते ह, लेकिन जब ऐसा प्रश्न आ जाता है जिस को हम नैतिक पतन ही नहीं बल्कि कानूनी जुर्म भी कह सकते हैं, जब नौबत यहां तक आ सकती है तब कोई भी ऐडमिनिस्ट्रेशन (प्रशासन) कोई भी राज्य इस सवाल को नहीं टाल सकता। जब तक यह सवाल आर्थिक दृष्टि कोण से देखा जा सकता था, सामाजिक नीति से देखा जा सकता था, राष्ट्रीय नीति की बुराई या भलाई के दृष्टिकोण से देखा जा सकता था, उस वक्त तक कुछ समय बढ़ भी सकता था, लेकिन जब तहकीकात से यह बात मालूम हुई कि इसमें कानूनी जुर्म हो रहा है, लोगों का रुपया, जनता का रुपया व्यक्तिगत नफे के लिये कानून के विरुद्ध इस्तेमाल हो रहा है, तो कोई भी सरकार जो कि गड्ढे में जाने के लिये तैयार न हो, इस को एक दिन के लिये भी नहीं टाल सकती थी। यह तो बड़ा अच्छा हुआ कि सरकार ने ठीक वक्त पर ठीक काम किया। इस काम के लिये मैं फाइनेन्स मिनिस्टर को बधाई देता हूं। यह प्रश्न नहीं था कि सरकार को लोक सभा पर कांफिडेन्स (विश्वास) नहीं था, या उससे सलाह नहीं ली गई, या उसको साफ बतलाया नहीं गया। मैं समझता हूं कि इस मामले में एक आदमी की हत्या हो जाय या कुछ एक आदमियों पर अत्याचार होता हो, इस की बनिस्बत यह जुर्म ज्यादा संगीन है कि देश की ख्याति को खतरे में डाला जाये और बेगुनाह इनसानों का, जो इस मामले में ज्यादा नहीं जानते है, रुपया नाजायज तौर पर खर्च कर के फायदा उठाया जाये। इस लिये सरकार ने ठीक काम किया, और उस को ठीक काम करना चाहिये।

[MR. DEPUTY-SPEAKER *in the Chair*]

कुछ लोग कहते हैं कि, साहब, इस कदम से जो इंश्योरेन्स कंपनीज थीं उन को नुकसान पहुंचेगा और हम लोगों को जिन्होंने सरकारी तरीके से काम किया है, उतनी सफलता नहीं मिलेगी जितनी कि उन आदमियों को जिन्होंने प्राइवेट (गैर सरकारी) तरीके से और व्यक्तिगत रूप से इस व्यवसाय को किया। मुझे ज्यादा आंकड़े तो मालम नहीं है, लेकिन इनश्योरेन्स कंपनियों के कुछ मुकदमे मैंने लड़े हैं। मैं सन् १९३६ में १८ मुकदमों में वकील था। उन १८ मुकदमों में ६ तो ऐसे थे जिन में उन आदमियों का इश्योरेन्स था जो कि जिन्दा नहीं थे, ६ ऐसे थे जिन के अन्दर तपेदिक के मरीजों का इनश्योरेन्स था, कुछ ऐसे थे जिन का प्रीमियम (बीमे की किस्त) दसरे आदमी उन आदमियों के नाम से देते थे जिन के नाम में इनश्योरेन्स था, वह ऐसे आदमी थे जिन का उन मामलों से कोई ताल्लुक ही नहीं था। इस तरह के इनश्योरेन्स ज्यादा हों या कम हों, यह बात मैं नहीं कह सकता, लेकिन यह जरूर कह सकता हूं कि इंनश्योरेन्स ज्यादा हो या कम हो, ज्यादा रुपया इकट्ठा हो या कम इकट्ठा हो, लेकिन कोई भी सरकार, जो कि सरकार कहलाने का दावा कर सकती है, इन हालात को कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। कोई भी इन्डस्ट्री (उद्योग) चले या न चले, लेकिन ऐसे आदमियों का इंश्योरेन्स हो जो कि जिन्दा भी न हों, यह एक अजीब तमाशा है इंश्योरेन्स कामयाब हो या नाकामयाब हो, यह दूसरा सवाल है, लेकिन कोई भी सरकार जो इस बात की इजाजत दे दे या खुला हाथ छोड़ दे कि एक आदमी जुर्म करे, रुपया कमाये और आराम से घर में रहे तथा एक बाइज्जत आदमी की हैसियत से शहर में ईमानदारी का ढोल पीटता फिरे, वह मैं समझता हूं कि इस समाज के संचालन के लायक नहीं है। कोई भी सरकार इन हालात को कैसे बर्दाश्त कर सकती है। सच पूछा जाये तो यह काम बहुत देर में हुआ, यह बहुत जल्दी ही होना चाहिये था। सन् १९५० में जब कि फाइनेन्स मिनिस्टर साहब ने वार्निंग (चेतावनी) दी थी, उसके कुछ दिन बाद ही तहकीकात करने के बाद इंश्योरेन्स को नैशनलाइज कर देना चाहिये था। इस के सिवा और कोई चारा नहीं था। वह कौन सरकार हो सकती है जो इसे बर्दाश्त कर सके, वह कौन समाज हो सकता है जो इस की इजाजत देकर भी सभ्य कहलाने का दावा कर सके? मेरी राय में तो जैसा मैं ने

[पंडित के. सी. शर्मा]

पहले भी दो बार कहा, फाइनेन्स मिनिस्टर ने यह बड़ा अच्छा काम किया और मुझे इस में शुबहा नहीं है कि इस को जल्द से जल्द होना चाहिये था। मैं कुछ दिन पब्लिक ऐकाउन्ट्स कमेटी (लोक लेखा समिती) का मेम्बर (सदस्य) रहा और मैंने देश को देखा, इस में कोई शुबहा नहीं है कि कहीं कहीं लोग कुछ सुस्त थे, कहीं कहीं रुपया इस तरीके से खर्च किया गया जिसे मुनासिब नहीं कहा जा सकता, लेकिन इस में भी शक नहीं है कि कुछ लोगों ने जिस मेहनत से और जिस ईमानदारी से काम किया उस की इस देश में बहुत कम आशा थी और जो सफलता उनको प्राप्त हुई उसकी भी आशा नहीं थी। यह माना कि चूंकि हमें रुपये की तादाद बड़ी दिखाई देती है, कहीं कहीं लाखों रुपया का सीमेन्ट खराब हुआ, लोहा इतना ज्यादा खरीदा गया, कहीं पर इतना ज्यादा सामान खरीदा गया कि वह बीस बरस में भी इस्तेमाल नहीं हो सकता, लेकिन जिस आदमी को एक बड़ा मकान बनाना होता है अगर वह ईंटों की गिनती करने लगे तो मकान कभी भी नहीं बना सकता। जितनी चीजें बड़ी होती हैं उन में खराबी भी होती है, कुछ बड़ी गल्तियां भी होती हैं, लेकिन बड़े काम को इस तरह से जांचना होता है कि उस में सफलता कितनी प्राप्त होती है। और जिस सफलता की ओर वह जाता है वह कितनी आवश्यक है और कितनी जल्दी होनी चाहिये। अगर इस दृष्टि से देखा जाय तो सरकार ने जो कुछ किया वह प्रशंसनीय है, उस की तारीफ हो सकती है। उसका जो खाता है वह मुनफी (घाटे) में नहीं है बल्कि वह क्रेडिट साइड (जमा खाता) में है, उन्नति की ओर ले जाता है, उस में कुछ करना धरना नहीं है, सिर्फ ईमानदारी की बात है। सरकार के पास बजाय प्राइवेट (गैर सरकारी) कंपनी के बहुत से ऐसे जराय हैं, उस के पास ऐसी शक्तियां हैं, उस के पास ऐसे तरीके हैं जिन के जरिये इस व्यवसाय में काफी वृद्धि होने की संभावना है। सब से बड़ी बात यह कि मान लीजिये कि १६५ कंपनियां हैं, उन के पास लम्बे चौड़े स्टाफ (कर्मचारी) हैं, बहुत से कर्मचारी हैं, उन की बड़ी तन्ख्वाहें हैं और बहुत कुछ रुपया फुजूल जाता है, अगर सरकार उस को एक सेन्टर में बन्द करे और उस के खर्चे को कुछ कम कर सके, जो जनता का रुपया फुजूल जाता है कुछ लोगों के पास, इस लिये फुजूल नहीं जाता कि वह भी हिन्दुस्तानी हैं और उनको इम्प्लायमेंट मिला हुआ है बल्कि जो जनसाधारण हैं उन के लाभ की दृष्टि से फुजूल जाता है और वह बच सकता है। इस तरह से वह खर्चा बहुत कुछ कम हो सकेगा और वह रुपया जनता के लाभ में सरकार खर्च कर सकेगी। इस दृष्टि से भी मैं समझता हूं कि सरकार ने यह काम बड़ा अच्छा किया और इससे सरकार को फायदा होगा।

जैसा कि फाइनेन्स मिनिस्टर ने कहा कि हमारा २९ प्रतिशत खर्च हुआ जब कि दूसरे देशों में ढाई परसेन्ट (प्रतिशत) पांच, पंद्रह और सत्तरह परसेन्ट (प्रतिशत) खर्च हुआ तो इस से हम को बड़ी शर्म आनी चाहिये। दुनियां में सब से ज्यादा खर्च सब से ज्यादा गरीब आदमियों के रुपये पर किया जाय इस से ज्यादा लज्जाजनक बात क्या हो सकती है, और कैसे इस बात की इजाजत दी जा सकती है, कैसे यह बर्दाश्त किया जा सकता है कि सब से गरीब देश में, सब से कम इनश्योरेन्स होने वाले देश में, सब से ज्यादा खर्च किया जाये? जितना ज्यादा अमीर देश है वह तो ज्यादा खर्च कर सकता है। उस देश के रहने वाले लोगों का स्टैंडर्ड आफ लिविंग (जीवन स्तर) भी ऊंचा होता है, रहन सहन का स्तर ऊंचा होता है। लेकिन हमारा देश जो एक बहुत गरीब देश है और बहुत गरीबी के दिन लोग गुजारते हैं, बहुत कम पैसा लोग जमा कर पाते हैं, उस के लिए २९ प्रतिशत का खर्चा मैं बहुत ज्यादा समझता हूं और इस को मैं अनैतिक तथा धर्म और नीति के विरुद्ध मानता हूं। इतने ज्यादा खर्च को किसी भी तरह से सहन नहीं किया जा सकता।

बिजिनेस (व्यापार) के सिलसिले में कहा गया है कि जब से आर्डिनेंस आया है जो काम करने वाले हैं उनको कोई रास्ता दिखाई नहीं देता है और वह कोई काम नहीं कर रहे हैं और सब काम ठप्प पड़ा है। मैं समझता हूं कि जब भी इस तरह की तबदीली आती है तो थोड़ा सा ढीलापन अवश्य आ जाता है। जैसा कि फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने कहा है और जिसके साथ मैं एग्री करता (सहमत) हूं, कि हमें निराश नहीं होना चाहिए, और न ही निराशा की झलक हमारे चेहरे पर आनी चाहिए। इनश्योरेंस के लिए बहुत स्कोप (क्षेत्र) है और ज्यों ज्यों हमारे देश के लोग शिक्षित होते जायेंगे, ज्यों ज्यों लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता जाएगा इनश्योरेंस शहरों से निकल कर गांवों में भी फैलता जाएगा। हमें यही उम्मीद होती है कि इनश्योरेंस बढ़ेगी और यह धारणा कि अगर यह प्राइवेट सैक्टर (गैर सरकारी क्षेत्र) में रहती तो ज्यादा बढ़ती और अब सरकारी क्षेत्र में आने से घटेगी, कुछ कान-विंसिंग (विश्वसनीय) मालूम नहीं देती है।

जहां तक हर चीज को नेशनलाइज करने का सवाल है जैसा कि मेहता साहब ने कहा है, मैं समझता हूं कि इस सभा में कोई भी इस दृष्टि-कोण को नहीं रखता है कि हर एक व्यवसाय या हर एक चीज या हर एक काम को या हर एक धंधे को नैशनलाइज किया जाए। प्रश्न यह है कि यदि हमें नेशनलाइज करना है तो इनश्योरेंस (बीमा) और बैंकिंग (बैंक व्यवसाय) को जरूर नेशनलाइज करना चाहिए। इस चीज पर सरकार को विचार करना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा किया गया तो बहुत सा रुपया सरकार के हाथ में आ जाएगा जिस को कि वह जनता के लाभ के लिए लगा सकेगी। आज देखने की चीज यह है कि कहां से हमें अधिक से अधिक रुपया प्राप्त हो सकता है जिसे कि हम देश को संवारने में, देश को ऊंचा उठाने में, देश के नव निर्माण में, लगा सकें। यह प्रश्न आज सरकार के सामने सब से गम्भीर प्रश्न है। इस लिए मैं समझता हूं कि इनश्योरेंस और बैंकिंग दो ऐसे व्यवसाय हैं जिनको की सरकार को अवश्य ही अपने अधिकार में ले लेना चाहिए। यदि किसी भी विशेषज्ञ की इसके बारे में राय पूछी जाये कि किन किन व्यवसायों पर सरकार का अधिकार होना चाहिए तो वह अवश्य ही कह देगा कि यह दो व्यवसाय ऐसे हैं जिन पर कि सरकार का ही अधिकार होना चाहिए।

अन्त में मैं फिर यह कहना चाहता हूं कि जो स्टेप (कदम) हमारे फाइनेंस मिनिस्टर साहब ने उठाया है वह जनता के लिए भी और सरकार के लिये भी लाभदायक सिद्ध होगा। इससे जनता जो रुपया इनश्योरेंस के प्रीमियम (किस्त) के रूप में देगी उसका अच्छे तरीके से इस्तेमाल होगा और सरकार द्वारा इस व्यवसाय को चलाये जाने से खर्च में भी कमी होगी। साथ ही साथ जो रुपया सरकार को प्राप्त होगा उसका इस्तेमाल देश को ऊंचा उठाने के लिए होगा जिस से कि अन्त में लोगों का ही फायदा होगा।

श्री राधे लाल व्यास (उज्जैन) : यह जो विधेयक सभा के सामने उपस्थित किया गया है इसका मैं स्वागत करता हूं और मैं समझता हूं कि इस विधेयक को लाकर सरकार ने एक बहुत ही अच्छा कदम उठाया है। लेकिन मुझे इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव सरकार के सम्मुख पेश करने हैं।

यह काम जो सरकार अपने हाथ में लेने जा रही है, यह बहुत बड़ा काम है और यह अच्छा होता यदि केन्द्रीय शासन इस जिम्मेदारी को अपने ऊपर लेने के बजाय राज्य सरकारों को यह काम सौंप देता। यदि ऐसा होता तो मैं समझता हूं कि यह काम बहुत ही आसानी और सहूलियत से हो सकता था।

यह तो आप को मालूम है कि हमारे देश में इनश्योरेंस का काम सबसे पहले मैसूर राज्य में शुरू किया गया था और उस राज्य ने अपने तमाम सरकारी कर्मचारियों के लिए जीवन बीमा कराना अनिवार्य कर दिया था। इसके बाद दूसरी देशी रियासतों ने भी मैसूर का अनुकरण किया और बीमा व्यवसाय चलाया। इनमें त्रावणकोर-कोचीन, हैदराबाद, इंदौर, ग्वालियर, बीकानेर, बड़ौदा आदि हैं। इन रियासतों की सरकारों ने भी स्टेट इनश्योरेंस (राज्य बीमा) कायम की और वहां के राज्य कर्मचारियों के लिये इनश्योरेंस कराना अनिवार्य कर दिया। साथ ही साथ कुछ राज्य सरकारों ने पबलिक (जनता) के लिए भी एक विभाग जीवन के बीमे का अलग खोल दिया और राज्य के कर्मचारियों के साथ ही साथ पबलिक को भी इसके अन्तर्गत ले आईं। इसका काफी स्वागत हुआ। तो मैं समझता हूं कि केन्द्रीय सरकार पर काफी बड़ी बड़ी जिम्मेदारियां हैं, बड़ी बड़ी योजनाओं को उसे पूरा करना है और बहुत से निर्माण कार्य करने हैं। इस लिए यह अच्छा होता यदि इनश्योरेंस को चलाने का काम राज्य सरकारों के सुपुर्द कर दिया जाता। ऐसा करने से, मेरे विचार में, यह काम ज्यादा योग्यता से और ज्यादा सफलता पूर्वक चलाया जा सकता था। हां इतना मैं अवश्य चाहता हूं कि इसका नियंत्रण, इस का सुपरविजन (अधीक्षण) पालिसी निर्धारण का काम, केन्द्रीय सरकार अपने हाथ में रखे। अब तो राज्यों की संख्या भी कम होने जा रही है और राज्य भी बड़े बड़े बनने जा रहे हैं, इस लिए भी यह कार्य उन्हीं को सौंप दिया जाना चाहिए।

जैसा कि मैंने अभी कहा कि दूसरे राज्यों ने जो भी कार्य किए हैं, और जिन में उनको सफलता प्राप्त हुई है, उसका हमें अनुकरण करना चाहिए। मैं चाहता हूं कि देश में जितने भी सरकारी कर्मचारी हैं वह अपनी तनख्वाह में से बहुत कम बचा सकते हैं। अगर वे अपने आप को इनश्योरेंस (बीमा) करवा लें तो इस से उनके पास सेविंग करने का, धन बचाने का, एक जरिया आ जाएगा। इस लिए मैं चाहता हूं कि लाइफ इनश्योरेंस सभी सरकारी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य कर दी जाए। जिन राज्यों में भी यह

[श्री राघे लाल व्यास]

हुआ है, यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं, मुझे अपने विद्यार्थी काल में स्टेट इनश्योरेंस के एक दफ्तर में काम करने का मौका मिला है, कि इसका कर्मचारियों पर बहुत अच्छा असर पड़ा है और उन्होंने इसका स्वागत किया है। उन्होंने इसको बचत का एक बहुत अच्छा जरिया माना है। साथ ही साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि हमने यह स्वीकार किया है कि द्वितीय योजना को पूरा करने के लिए हमें छोटी छोटी बचतों पर भी निर्भर करना पड़ेगा और छोटी बचतों को प्रोत्साहन देने के लिए इससे अच्छा तरीका और कोई नहीं हो सकता है। इस लिए जितने भी सरकारी कर्मचारी हैं, चाहे वह सरकारी दफ्तरों में हों या स्टेट अंडरटेकिंग्ज (राज्य उपक्रमों) में हों, या बड़े बड़े कारखानों में हों, उन सब के लिए यह लाइफ इनश्योरेंस कम्पलसरी (अनिवार्य) कर दिया जाये तो लोगों में बचाने की आदत पड़ जायेगी और बहुत सा पैसा देश के निर्माण कार्यों में लगाने के लिए हमें उपलब्ध हो सकेगा।

जब राज्य ने बीमा व्यवसाय को अपने हाथ में ले लिया है तो यह बात जरूरी है कि काम में किसी प्रकार की ढील न हो। सरकार को चाहिए कि वह यह देखे कि जनता में या भावना पैदा हो और लोग यह अनुभव करें कि जितनी जल्दी कम्पनियों में काम होता था, और प्रीमियम के पेमेंट (बीमे की किस्त का भुगतान) की और मैडीकल एग्जामिनेशन (डाक्टरी परीक्षा) आदि की जो सहूलियतें कम्पनियों में थीं वे कम न हों और जनता का काम विलम्ब से न हो जिससे कि जनता को परेशानी हो। यह काम बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसी के द्वारा यह व्यवसाय लोकप्रिय हो सकेगा।

Mr. Deputy-Speaker: The hon. Member may continue tomorrow.

5-31 P.M.

The Lok Sabha then adjourned till Eleven of the Clock on Friday, the 2nd March, 1956.